Research Paper | E-ISSN NO : 2455-295X | VOLUME : 7 | ISSUE : 7 | JULY 2021

# ''वसुधैव कुटुम्बकम् के आदर्श का मूर्तरूप – गवरी''

डॉ. मोहन लाल जाट [1]

[1] व्याख्याता (ललित कला), विद्या भवन गांधी शिक्षा अध्ययन संस्थान, उदयपुर राजस्थान–313001

**ABSTRACT:**

**गवरी नृत्य विशिष्ट वर्ग अथवा जाति की धरोहर होते हुए भी यह समस्त लोक के आदर्श, कला, शिल्प, संस्कृति तथा वैभव को अपने में समाहित किये तथा जनमानस को एक स्वरूप में बांधे रखता है। यह विशुद्ध धार्मिक व सामाजिक भावनाओं के साथ किया जाने वाला यह अनुष्ठानपरक नृत्य है। कब समाज ने किस नृत्य को जन्म दिया इसका निश्चित समय बता पाना कठिन है। आज के नृत्य नाट्य अंगों भावों का परिश्कृत रूप है जो धीरे–धीरे परम्पराओं व पीढ़ी दर पीढ़ी के अनुभव से प्रदर्शनधर्मी कलारूपों के साथ जाना गया। आज की महत्ती आवश्यकता है कि इन कलात्मक पक्षों को सकारात्मक दृष्टि प्रदान कर समाजोंपयोगी बनाया जाए जिससे समाज की क्रियाशिलता को बढ़ावा मिलेगा।**

**KEYWORDS:**

गवरी राजस्थान के मेवाड़ अंचल की लोक परम्परा में गवरी नृत्य नाटिका जो भारतवर्ष में कहीं ऐसा नाट्य देखने को नहीं मिलेगा जो इतनी दीर्घ अवधि तक पात्रों के बड़े समूह के साथ विविध गांवों में इतने सुव्यवस्थित ढंग से दिनभर प्रदर्शित किया जाता है। गवरी मेवाड़ अंचल के उदयपुर, डूंगरपुर, चित्तौड़, राजसमन्द तथा बांसवाड़ा क्षेत्र में बसे भीलों का भेरूनाट्य कहा जाता है। यह भील जनजाति का ऐसा नाट्य है जिसमें उसकी धार्मिक आस्थाओं, सामाजिक परम्पराओं एवं सांस्कृतिक गतिविधियों का बड़ा गहन अंकन एवं चित्रण मिलता है। समस्त गवरी नाट्य किसी विशिष्ट धार्मिक भावना एवं धार्मिक कर्तव्य पर आधारित हैं।

गवरी के मूल में नृत्य की प्रधानता रही है। नृत्य की यह प्रधानता आज भी इसमें देखी जाती है। इसी प्रधानता के कारण गवरी नाट्य को गवरी का नाच भी कहा जाता है। गांव को कोई चौराहा अथवा खुला आंगन ही गवरी का रंगमंच होता है। भाद्र महीने से प्रारम्भ होकर पूरे सवा महीने तक प्रतिदिन प्रातः 9 से सांय 6 बजे तक, जहाँ–जहाँ गवरी वाले गांव की बहिन बेटिया ब्याई हुई होती हैं वहाँ इसका प्रदर्शन किया जाता है। प्रत्येक भील परिवार का सदस्य इसमें भाग लेना अपना धार्मिक कर्त्तव्य समझता है। फलतः गवरी में अभिनेताओं की संख्या 40 से 100 के लगभग होती है। गवरी के मूल में नृत्य की प्रधानता रही है। इसका कथानक शिव को केन्द्र बनाकार संघटित किया गया है। इसमें शिव का जो रूप मिलता है वह अत्यंत विचित्र है। षिव तथा भस्मासुर का प्रतीक राई बूढ़िया, मोहिनी तथा पार्वती की प्रतिमूर्ति दोनों राईयां, कुटकडिया तथा पाटभोपा ये पाँचों गवरी के प्रमुख नायक होते हैं जिन्हे 'माजी' कहते है। गवरी में जो दश्य अभिनीत किये जाते है वो खेल, नाट्य का सुत्रधार होता है जो प्रत्येक खेल के पूर्व उसकी संक्षिप्त कथा सुनाता है। इसे उस खेल का झामटड़ा सुनाना है। इससे आने वाले खेल तथा उसकी कथा की जानकारी दर्शकों को पहले से हो जाती है। ये झामटड़े गवरी के मूल भाग के छोटे–छोटे अंश होते है।

गवरी में जो भी नाट्य प्रस्तुतीकरण की कला निहित है वह अपने आप बिना किसी प्रयास के निरन्तर व्यवहार एवं अभ्यास से विकसित है। प्रत्येक भील अपने आप में कला की दृष्टि से इतना प्रतिभावान होता है कि जो भी वह करता हैं वही कला बन जाती है। गवरी में यदि कोई शिल्प है तो यही है कि सैकड़ों वर्षों से व्यवहारिक एवं प्रचलित होते हुए भी वह आज भी उतना हो तरोताजा एवं प्रेरणादायक है जितना पहले था। सैकड़ों बार इसे निरन्तर देखने पर भी यह पुराना नहीं लगता। इस ताज़गी के पीछे एकमात्र यही कारण है कि गवरी पात्र प्रतिदिन अपनी प्रतिभा का प्रयोग करता है। वह घिसी–पिटी बात कभी नहीं करता। अपनी अंगभंगिमाओं में भी वह किसी घिसी–पिसी मुद्रा का प्रयोग नहीं करते। वह हर बार मुद्राओं, नवीन कल्पनाओं एवं नवीन सूझबूझ का उपयोग करते हैं। यह एक ऐसी नाट्य विद्या है कि जिसमें रंगमंच सजाया नहीं जाता दर्शकों के लिए बैठने का स्थान निश्चित नहीं होता। प्रदर्षन के प्रारम्भ एवं समाप्ति का समय निर्धारित नहीं होता। नहीं किसी से पशंसा प्राप्त करने की किसी को इच्छा होती। किसी नाट्य–तंत्र विशष का जिसमें पालन लाजमी नहीं होता। जिसमें पात्र नियुक्त नहीं किये जाते। पात्रों को कहीं प्रशिक्षण पाप्त नहीं करना पड़ता तथा प्रदर्शन से पूर्व किसी तरह के पूर्वाभ्यास की आवश्यकता नहीं होती। जो व्यक्ति जिस नाट्य का मंचन करता है वही खेल उसी को अगली पीढ़ी द्वारा मंचन किया जाता है। इस तरह से गवरी का सभी मंचित पात्रों में स्थानान्तरण पीढ़ी दर पीढ़ी होता रहता है।

## वसुधैव कुटुम्बकम् के आदर्श का मूर्तरूप – गवरी

गवरी ने जहां एक ओर सामुहिक जीवन को सुसंगठित, सुदृढ़ तथा सुव्यवस्थित किया है वहां आपसी मेलजोल, रागरंग तथा मानवीय सद्वृत्तियों की अभिवृद्धि की है। देव, दानव पशु तथा मानवीय जीवन के लोकानुरंजन को एक समानधर्मी मंच पर प्रस्तुत कर, गवरी ने वसुधैव कुटुम्बकम् के आदश को मूर्तरूप दिया है। आनन्द और उल्लास के अवसरों पर सार्ववर्गिक, सार्ववणिक एवं सार्वधर्मिक रूप में एकत्र हो, स्वच्छन्तापूर्वक अनुरंजन प्राप्त करने से आत्मा का विकास होता है, मन की ग्रन्थियां खुलती है, कुंठाएँ हल्की होती है तथा वैयक्तिक जीवन की सारी प्रवृतियां समष्टि हित की ओर उन्मुख होती है। इससे आस–पास का जीवन भी अपने आप को उल्लास आनन्द एवं स्फूर्तिमय अनुभव करता है। एक दुसरे को मेलजोल से संस्कृतियों का आदान–प्रदान होता है साथ ही सहानुभूति सद्भावना तथा सहकार जैसे गुणों का विकास होता है। गवरी नृत्य–नाटिका में इन तत्वों का पूर्णतः दिग्दर्शन मिलता है। इससे जहां लोकजीवन को अपने धर्म कर्म के प्रति आस्थावान बनाया है वहां उसकी परम्परा और रूढ़ियों को संगीत, कला आदि क्षैत्रों में गवरी नृत्य नाटिका की अक्षुण देन रही है।

E-ISSN NO : 2455-295X | VOLUME : 7 | ISSUE : 7 | JULY 2021

गवरो नृत्य नाटिका कला का एक ऐसा सशक्त माध्यम है जो प्रदेश की संस्कृति व उसकी कलात्मक व्यंजना को दश्य स्वरूप में सहजता से ही प्रकट कर देती है व समझा देती है। यह एक ऐसी सक्रियात्मक कला है जो संस्कृति के विविध तत्वों को लाघव में व सार रूप में अभिव्यक्त करती है। इसको इस तरह से भी समझाया गया है कि वह किस प्रदेश से सम्बन्धित है तथा नृत्य के विभिन्न घटकों व साज सहकारों के माध्यम से भी यह सरलता से प्रकट हो जाता है कि वह किस क्षेत्र विशेष की सांस्कृतिक प्रक्रिया की अभिव्यक्ति प्रस्तुत कर रहा है।

### समस्त गवरी नाट्य स्वान्तः सुखाय होता है।

समस्त गवरी नाट्य स्वान्तः सुखाय होता है। किसी को खुश करने तथा प्रभावित करने इनाम पाने का इसमें कोई लक्ष्य नहीं होता, न विविध गवरी दलों में किसी प्रकार की स्पर्धा एवं ना ही एक दूसरे को गिराने की ही भावना रहती है। यदि एक गवरीदल कहीं प्रदर्शन दे रहां होता हैं तो दूसरा दल वहां जाता ही नहीं और यदि जाता भी है तो दोनों दल मिलकर ही गवरी नाचते हैं, गवरी प्रस्तुतिकरण अपने आप में ही एक शुद्ध एवं सुनियोजित प्रस्तुतिकरण बन गया है। संसार में शायद ही कोई भी ऐसा नाटक नहीं है जो दिन में व कभी–कभी रात में भी चलता हो और जो एक दिन में ही नहीं महीनों तक चलता हो। इसका प्रस्तुतिकरण यदि इतना प्रभावशाली न होता तो हजारों पुरूष, महिलाएँ मीलों पैदल चल कर इसे देखने नहीं आते और वर्तमान समय में यह कला लुप्त हो जाती। यह एक ऐसी कला हे जिसमें सहयोग, सैहार्द्र, निष्ठा, आस्था, लगन, सच्चाई, उत्साह, कार्यकुशलता, व्यवहार कुशलता तथा पारम्परिक प्रेम की इतनी ऊंची परम्परा हो, उसका नाट्य प्रस्तुतिकरण अपने आप ही ऊंचा हो जाता है।

गवरी पात्र अपने नाट्यकर्म में इतने आस्थावान होते हैं कि वे उसे नाट्य के रूप में लेते ही नहीं। सभी पात्र वेश–भूषा एवंषरीर को विभिन्न रंगों द्वारा सृजित कर नाट्य चरित्र की मौलिकता की भावना से ओतप्रोत रहने के कारण नकल को भी असल ही समझते हैं। जनजातियों का मानना है कि जीवन की प्रत्येक गतिविधि किसी देवी शक्ति द्वारा ही संचालित हैं। उनके विश्वास के अनुसार सर्दी, गर्मी, वर्षा, प्रकृति प्रकोप, आंधी, तूफान सभी उनके विशिष्ट आराध्य देवताओं द्वारा शासित होते हैं। उनका विश्वास है कि उनके सभी सगे–सम्बन्धी परिजन आदि मर कर पूर्वज (देवता) बनते हैं और उनकी पत्थर की मूर्तियां गढ़कर उन्हें पूजा, धूपध्यान एवं गवरी नाट्य द्वारा प्रसन्न रखना आवश्यक होता है। प्रत्येक पात्र गवरी पात्रों की विशिष्ट भावनाओं में ओतप्रोत रहता है।

गवरी नाट्य के विभिन्न पात्रों के अनुरूप अलग–अलग पोशाकें एवं रूप का सृजन करते हैं। उनके रंगरूपों का भी उन्हें सम्पूर्ण ज्ञान होता है। पात्रों के गुण–दोषों के अनुसार ही उन्हें रंगा का चुनाव करना आता है। कुछ ही पलों में पात्र परिवर्तन की सभी कलाएं उनको याद हैं। इस दिशा में भी वे पूरी तरह कलाप्रेमी है। विभिन्न रूपों या पात्रों का बनने के पीछे इनका धार्मिक विश्वास एवं विभिन्न देवी–देवताओं को खश करना होता है। इनकी रूप सज्जा काशरोर पर रंगों के प्रभाव से विभिन्न पात्र की पहचान प्रतीकात्मक रूप से की जा सकती है। गवरी के पात्रों के मुख–विन्यास एवं सम्पूर्ण शरीर को कालिख, मुरदासिंघी, भोडल, चूना, राख, हड़मच्छी, गेरू, पत्तियां, घास, हल्दी, नील आदि से रंगों के संयोजन एवं रेखाओं द्वारा शरोर को विभिन्न प्रभावों द्वारा पात्रों के अनुरूप दिखाने का प्रयास करते हैं। मुख की सज्जा इस प्रकार की जाती है कि दूर बैठा व्यक्ति भी यह समझ जाए कि इसने किसका रूप सजाया है। गवरी नृत्य नाटिका खेलते समय तत्काल ही मुखों पर चित्रण करके मुखौटे निर्मित किये जाते हैं। कथानक के अनुसार मुख के साथ सम्पूर्ण शरीर को भी अलंकृत करते हैं। नाहर (शेर) बने व्यक्ति के सारे शरीर पर पीली, काली या सफेद धारियां बनाते हैं, स्थान–स्थान पर चकते डालते हैं। सिर के ऊपर कसा कपड़ा बांधते हैं जिसमें से दो कान निकले रहते हैं एवं लाल रंग की एक जीभ बाहर निकली रहती है। इसके मुख, हाथ, पैर पर भी धारियां बनी होती है। यह हाथ व पैर से शेर के समान ही जल्दी–जल्दी चलता है। इस मानव अलंकृत ''नाहर'' को हम वास्तविक शेर के अलंकरण के समान देख सकते हैं तथा इसकी रचना में काफी कुछ सफलता भी प्राप्त कर लेते हैं वैसे ही हटिया, भियावड़, मीणा, कालूकीर, बनजारा, भंवरा, रीछड़ी, नाहर, दाणी, भोपा, कानजी आदि। ये मुखौटे समय एवं घटना के आधार पर चित्रित कर लिये जाते हैं।

इस सज्जा में ये अपनी कला को पूर्ण रूप से प्रदर्शित करते हैं। इनके लिये मुख गहरे रंगों से रंग दिये जाते हैं। रंग सज्जा के लिये मुख्यतः चार रंग काम में लाये जाते हैं। काला, नीला, पीला तथा लाल। प्रसाधनों में काजल, मुर्दासिंघी, हल्दी, आटा, कुमकुम, खड़िया आदि मुख्य हैं। यह सज्जा पात्रों के अनुरूप पूर्ण कलात्मक ढंग से की जाती हैं जो लोक सिद्ध होती हैं। इस समय प्राकृतिक उत्पादानों का भी प्रयोग किया जाता है, जैसे घास, मक्की की पत्ती आदि। रंगों का प्रयोग पात्रों के अनुरूप होता है जैसे चोर काला, साधु पीला, नार लाल व पीला। इनकी अलंकरण कला उल्लेखनीय है। गवरी नाट्य के इन विशिष्ट तत्वों के पालन में गवरी पात्रों को किसी प्रकार के अध्ययन विश्लेषण प्रशिक्षण आदि की आवश्यकता नहीं होती। पात्रों एवं उनकी पोशाकों के रूपरंग की शास्त्रनुकूल परम्पराएँ, चाहे गवरी पात्रों को ज्ञात नहीं, तो भी उनके व्यवहार में वे सभी निकलती है। उन्हें अनजाने में ही यह भली प्रकार ज्ञात रहता है कि नाट्य प्रस्तुतीकरण के समय विरोधी रसों को एकसाथ प्रदर्शित न किया जाय। अतः सम्पूर्ण नाट्य शान्त से चलकर उत्तरोत्तर अन्य विकट रसों को ग्रहण करता है। गवरी में विशेष करके रोद्र, वीभत्स, हास्य, वीर, भयानक व श्रृंगार रस के भी कहीं कहीं प्रसंग है। गवरी पात्रों को अपनी कला अदायगी पर ही पूरी तरह निर्भर रहना पडता है। इसमें कला के वे सभी तत्व विद्यमान है जो अन्य कलाओं में नही मिलते है।

गवरी नृत्य का प्रमुख आकर्षण इसमें प्रयुक्त होने वाले विशेष वाद्ययन्त्र है, जिनमें मादल, थाली, ढोलक, ढोल प्रमुख है। सधे हुए हाथ की थाप जब इन परम्परागत वाद्य यन्त्रों पर पड़ती है तो सारा वातावरण गुंजयमान हो उठता है इनकी लय और ताल इतनी प्रभावोंत्पादक होती है कि नर्तकों के अलावा भीड़ में खड़े व्यक्तियों के पांव भी थिरकने लग जाते है। इन वाद्ययत्रों की ताल के साथ कलाकार के होंठो से गवरी के साथ गाये जाने वाले विशेष गीत नृत्य एवं संवाद के साथ जब अभिव्यक्त होते है तो दर्शक भी मंत्र मुग्ध होकर आनन्द विभोर हो उठते है। गवरी नृत्य में प्रयुक्त साधन में तलवार, भाला, कटार, तीर बाण (धनुष), त्रिशूल, बांस के डण्डें, लोहे की सांकल (लोहे की चैन), बन्दुक प्रमुख रूप से प्रयुक्त होती है।

गवरी नृत्य विशिष्ट वर्ग अथवा जाति की धरोहर होते हुए भी यह समस्त लोक के आदर्श, कला, शिल्प, संस्कृति तथा वैभव को अपने में समाहित किये तथा जनमानस को एक स्वरूप में बांधे रखता है। यह विशुद्ध धार्मिक व सामाजिक भावनाओं के साथ किया जाने वाला यह अनुष्ठानपरक नृत्य है। कब समाज ने किस नृत्य को जन्म दिया इसका निश्चित समय बता पाना कठिन है। आज के नृत्य नाट्य अंगों भावों का परिष्कृत रूप है जो धीरे–धीरे परम्पराओं व पीढ़ी दर पीढ़ी के अनुभव से प्रदर्शनधर्मी कलारूपों के साथ जाना गया। आज की महत्ती आवश्यकता है कि इन कलात्मक पक्षों को सकारात्मक दृष्टि प्रदान कर समाजोंपयोगी बनाया जाए जिससे समाज की क्रियाशिलता को बढ़ावा मिलेगा।

## REFERENCES


1. देवीलाल सामर, भारतीय लोक कला ग्रन्थावली, भारतीय लोक कला मण्डल, उदयपुर (राजस्थान) 1980
2. डॉ. महेन्द्र भानावत, उदयपुर के आदिवासी , लोक नाट्यः उद्भव और विकास, भारतीय लोक कला मण्डल, उदयपुर (राजस्थान) 1903
3. उपाध्याय वासुदेव, राजस्थान की कला, संस्कृति और साहित्य, विवेक प्रकाशन, उदयपुर (राजस्थान) 1981
4. वाचस्पति गैरोला, भारतीय नाट्य परम्पराएँ और अभिनवदर्पण, स्वास्तिक पब्लिकेशन, इलाहाबाद, 1967
5. मालिनी काले, भील समुदाय, हिमांशु प्रकाशन, उदयपुर (राजस्थान) 1987